ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 139-142**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

गोंड जनजाति के प्रथानुगत कानून का समाजशास्त्रीय एवं विधिक अध्ययन

डॉ0 मिथिलेश कुमार सिंह

असिस्टेन्ट प्रोफेसर– समाजशास्त्र, सावित्री बाई फुले राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चकिया– चन्दौली (उ0प्र0) भारत

Received-13.10.2025, Revised-20.10.2025, Accepted-27.10.2025 **E-mail : dr.mithileshkumarsingh @gmail.com**

सारांशः ***भारत में जनजातीय सामाजिक संरचना में प्रथानुगत कानूनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। ये कानून सामाजिक नियन्त्रण, न्याय–व्यवस्था, नैतिक अनुशासन और सामुदायिक एकता बनाए रखते हैं। गोंड जनजाति, मध्य भारत की प्राचीन एवं व्यापक जनजातियों में से एक, अपनी विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था और पारम्परिक न्याय–प्रणाली के लिए जानी जाती है। इस शोधपत्र का उद्देश्य गोंड जनजाति के प्रथानुगत कानूनों का समाजशास्त्रीय एवं विधिक दृष्टिकोण से अध्ययन करना है। इसमें विवाह, परिवार, वंशानुक्रम, सम्पत्ति अधिकार, सामाजिक अपराध और दण्ड व्यवस्था से सम्बन्धित नियमों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ये अलिखित नियम सामाजिक सन्तुलन, अनुशासन और सामुदायिक सह–अस्तित्व को बनाए रखते हैं। साथ ही, पंचम अनुसूची, पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 और वनाधिकार अधिनियम के सन्दर्भ में इन प्रथाओं की विधिक वैधता और समकालीन चुनौतियों की समीक्षा की गई है। निष्कर्ष यह है कि यदि प्रथानुगत कानूनों को संवैधानिक मूल्यों और मानवाधिकारों के अनुरूप सन्तुलित किया जाए, तो वे जनजातीय समाज के संरक्षण, स्वशासन और सशक्तिकरण का प्रभावी माध्यम बन सकते हैं।***

कुंजीभूत शब्द– गोंड जनजाति, प्रथानुगत कानून, जनजातीय न्याय, विवाह, सम्पत्ति, दण्ड–यवस्था, सांस्कृतिक पहचान।

भूमिका– जनजातीय समाज भारतीय सभ्यता की प्राचीनतम सामाजिक परतों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनकी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ आधुनिक राज्य और औपचारिक विधि–व्यवस्था के उद्भव से बहुत पहले से विद्यमान रही हैं। इन समाजों का संचालन मुख्यतः परंपरा, रीति–रिवाज तथा सामुदायिक स्वीकृति पर आधारित प्रथानुगत कानूनों के द्वारा होता रहा है। गोंड जनजाति, जो मध्य भारत की एक प्रमुख एवं प्राचीन जनजाति है, लम्बे समय तक अपनी आन्तरिक सामाजिक नियन्त्रण–व्यवस्था, पारम्परिक पंचायतों और प्रथानुगत कानूनों के आधार पर शासित होती रही है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रथानुगत कानून वे सामाजिक नियम हैं, जिन्हें समाज की सामूहिक मान्यता प्राप्त होती है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते हैं तथा जिनका उल्लंघन सामाजिक दण्ड को आमन्त्रित करता है।[1] प्रथानुगत कानून वे सामाजिक नियम हैं, जो दीर्घकालीन सामाजिक व्यवहार, परम्परा और सामूहिक स्वीकृति के आधार पर विकसित होते हैं। ये नियम लिखित विधानों के रूप में संहिताबद्ध न होकर भी समाज के सदस्यों हेतु बाध्यकारी होते हैं। विशेष रूप से जनजातीय समाजों में प्रथानुगत कानून सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे विवाह, परिवार, सम्पत्ति, उत्तराधिकार, विवाद–निपटान तथा दण्ड–व्यवस्था को नियन्त्रित करते हैं। इन कानूनों की वैधता राज्य की औपचारिक स्वीकृति से नहीं, बल्कि समाज की सामूहिक मान्यता और परम्परागत निरन्तरता से प्राप्त होती है।[2] गोंड समाज में विवाह, परिवार, सम्पत्ति, उत्तराधिकार, अपराध तथा दण्ड से सम्बन्धित नियमों का निर्धारण इन्हीं परम्परागत प्रथाओं के माध्यम से किया जाता रहा है। आधुनिक भारत में औपनिवेशिक काल से लेकर स्वतन्त्रता के पश्चात् तक, जब औपचारिक विधि–व्यवस्था और राज्य का हस्तक्षेप जनजातीय क्षेत्रों तक विस्तारित हुआ, तब प्रथानुगत कानूनों और राज्य कानूनों के बीच अन्तःक्रिया, समन्वय तथा कई बार टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई। भारतीय संविधान ने जहाँ एक ओर समानता, स्वतन्त्रता और मानवाधिकारों की गारन्टी प्रदान की, वहीं दूसरी ओर अनुसूचित जनजातियों की परम्पराओं, सांस्कृतिक पहचान और स्वशासन की रक्षा हेतु पंचम अनुसूची जैसे विशेष प्रावधान भी किए।[3] इस प्रकार, संविधान परम्परा और आधुनिक विधिक व्यवस्था के मध्य सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। इस सन्दर्भ में गोंड जनजाति के प्रथानुगत कानूनों का समाजशास्त्रीय एवं विधिक अध्ययन अत्यन्त प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि यह अध्ययन परम्परा और आधुनिकता, सामुदायिक स्वायत्तता तथा संवैधानिक शासन के बीच अन्तर्सम्बन्धों को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

गोंड जनजाति में प्रथानुगत कानून– गोंड जनजाति की सामाजिक संरचना का मूल आधार उसके प्रथानुगत कानून हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते हुए सामाजिक नियन्त्रण, न्याय तथा सामुदायिक सन्तुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आए हैं। ये कानून यद्यपि लिखित रूप में संहिताबद्ध नहीं हैं, तथापि समाज के प्रत्येक सदस्य हेतु बाध्यकारी होते हैं, क्योंकि इन्हें सामूहिक स्वीकृति, परम्परा और सामाजिक नैतिकता का समर्थन प्राप्त होता है। गोंड समाज में प्रथानुगत कानून केवल व्यवहार को नियन्त्रित करने वाले नियम मात्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक पहचान और सामूहिक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति भी करते हैं। आधुनिक राज्य व्यवस्था और औपचारिक विधि–प्रणाली के आगमन से पूर्व यही कानून सामाजिक व्यवस्था, अनुशासन और न्याय का प्रमुख आधार थे।

गोंड समाज में विवाह को केवल दो व्यक्तियों के निजी सम्बन्ध के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक संस्था के रूप में देखा जाता है, जो परिवार, कुल और समुदाय को परस्पर जोड़ती है। विवाह के माध्यम से न केवल दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित होते हैं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व, आर्थिक सहयोग और सांस्कृतिक निरन्तरता भी सुनिश्चित होती है। विवाह से सम्बन्धित सभी नियम प्रथानुगत कानूनों द्वारा नियन्त्रित होते हैं, जिनका उद्देश्य सामाजिक सन्तुलन, नैतिक अनुशासन और सामुदायिक एकता को बनाए रखना होता है। गोंड समाज में समान कुल या गोत्र में विवाह पूर्णतः निषिद्ध है। इसे सामाजिक मर्यादा और नैतिक नियमों का गम्भीर उल्लंघन मानते हैं। इस निषेध का उद्देश्य रक्त सम्बन्धों की शुद्धता बनाए रखना तथा सामाजिक संरचना में सन्तुलन और विविधता को सुरक्षित रखना है। इसके विपरीत, विधवा–विवाह को गोंड समाज में सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है। विधवा–विवाह को न तो अनैतिक माना जाता है और न ही इससे स्त्री का सामाजिक बहिष्कार होता है। यह प्रथा गोंड समाज की व्यावहारिक, यथार्थवादी और मानवीय दृष्टि को प्रतिबिम्बित करती है, जो सामाजिक सुरक्षा और पुनर्वास को प्राथमिकता देती है। इसी प्रकार तलाक को भी सामाजिक कलंक के रूप में नहीं देखा जाता। यदि दाम्पत्य जीवन असफल सिद्ध होता है, तो तलाक एक व्यावहारिक समाधान के रूप में स्वीकृत होता है। विवाह और पारिवारिक विवादों का निपटारा प्रायः ग्राम पंचायत या जनजातीय सभा द्वारा किया जाता है, जहाँ सामूहिक विमर्श, परम्परा और सामाजिक सहमति के आधार पर निर्णय लिए जाते हैं।[4] यह व्यवस्था औपचारिक न्यायालयों की तुलना में

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

अधिक सुलभ, त्वरित और मानवीय मानी जाती है, क्योंकि इसमें समुदाय की सक्रिय भागीदारी और सामाजिक पुनर्स्थापन पर विशेष बल दिया जाता है।

गोंड समाज में सम्पत्ति, विशेषतः भूमि, केवल एक आर्थिक संसाधन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पहचान का भी आधार है। भूमि से जनजातीय जीवनपद्धति, परम्पराएँ, धार्मिक विश्वास और आजीविका गहनतापूर्वक जुड़ी हुई हैं। प्रथानुगत कानूनों के अन्तर्गत भूमि पर सामूहिक स्वामित्व की अवधारणा प्रमुख रही है, जिसमें व्यक्तिगत अधिकारों की अपेक्षा सामुदायिक हित को अधिक महत्व दिया जाता है। उत्तराधिकार व्यवस्था सामान्यतः पितृवंशीय होती है, किन्तु उस पर समुदाय का नियन्त्रण बना रहता है। भूमि का हस्तान्तरण केवल परिवार का निजी निर्णय नहीं होता, बल्कि इसके लिए समुदाय की स्वीकृति भी आवश्यक मानी जाती है। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि भूमि का उपयोग समुदाय के व्यापक हित में हो और किसी भी प्रकार का शोषण या असमान वितरण न हो। परम्परागत रूप से महिलाओं को भूमि और सम्पत्ति में सीमित अधिकार प्राप्त रहे हैं, यद्यपि वे कृषि कार्य, वन संसाधनों के संरक्षण और पारिवारिक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह स्थिति आधुनिक संवैधानिक समानता के सिद्धान्तों से भिन्न अवश्य है, किन्तु इसे गोंड समाज की ऐतिहासिक परिस्थितियों और पारम्परिक सामाजिक संरचना के सन्दर्भ में समझना चाहिए।[5]

स्वतन्त्र भारत में वनाधिकार अधिनियम, 2006 ने गोंड समाज सहित अनेक जनजातीय समुदायों के पारम्परिक भूमि और वन संसाधनों पर अधिकारों को विधिक संरक्षण प्रदान किया है। इस अधिनियम ने प्रथानुगत भूमि अधिकारों को औपचारिक कानूनी मान्यता देकर राज्य कानून और जनजातीय परम्पराओं के बीच एक सेतु का कार्य किया है, जिससे जनजातीय समाज की आजीविका, आत्मसम्मान और सांस्कृतिक पहचान को संरक्षण मिला है।

गोंड समाज में अपराध को केवल कानूनी उल्लंघन के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक विचलन के रूप में देखा जाता है। इसी कारण दण्ड–व्यवस्था का उद्देश्य प्रतिशोध नहीं, बल्कि सुधार, क्षतिपूर्ति और सामाजिक पुनर्स्थापन होता है। आर्थिक दण्ड, सार्वजनिक क्षमा–याचना और सामुदायिक सेवा जैसे दण्ड प्रमुख हैं, जिनका उद्देश्य अपराधी को समाज से अलग करना नहीं, बल्कि उसे पुनः समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित करना होता है। कारावास जैसी कठोर और अलगावकारी व्यवस्था का अभाव गोंड समाज की दण्ड प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यह व्यवस्था आधुनिक पुनर्स्थापनात्मक न्याय सिद्धान्त के अत्यन्त निकट मानी जा सकती है, जिसमें पीड़ित, अपराधी और समुदाय, तीनों की सहभागिता से न्याय सुनिश्चित किया जाता है।[6] इस प्रकार गोंड जनजाति की प्रथानुगत न्याय–व्यवस्था मानवीय, सुधारात्मक और सामुदायिक मूल्यों पर आधारित एक प्रभावी सामाजिक प्रणाली के रूप में उभरती है।

प्रथानुगत कानून का समाजशास्त्रीय एंव विधिक परिप्रेक्ष्य– समाजशास्त्रीय दृष्टि से गोंड जनजाति के प्रथानुगत कानून उनकी सामाजिक संरचना का मूल आधार हैं। ये कानून केवल सामाजिक व्यवहार को नियन्त्रित करने का साधन नहीं हैं, बल्कि सामाजिक अनुशासन, स्थिरता तथा सामूहिक चेतना को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। औपचारिक राज्य कानूनों की अनुपस्थिति अथवा सीमित हस्तक्षेप की स्थिति में प्रथानुगत कानून सामाजिक नियन्त्रण के प्रभावी उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। गोंड समाज में इन नियमों का पालन बाह्य दण्ड के भय से नहीं, बल्कि सामाजिक स्वीकृति, परम्परा और सामूहिक नैतिकता के कारण होता है। गोंड जनजाति के प्रथानुगत कानून सामुदायिक एकता को सुदृढ़ करने में विशेष योगदान देते हैं। विवाह, परिवार, सम्पत्ति और दण्ड से सम्बन्धित नियम व्यक्ति को समुदाय से जोड़कर रखते हैं तथा सामाजिक विचलन की स्थिति में सामूहिक हस्तक्षेप सुनिश्चित करते हैं। ग्राम पंचायत और जनजातीय सभाएँ केवल विवाद निपटान की संस्थाएँ नहीं हैं, बल्कि वे सहभागिता, संवाद और सहमति निर्माण के मंच भी हैं। इससे व्यक्ति में यह चेतना विकसित होती है कि वह केवल अपने निजी हितों के लिए नहीं, बल्कि पूरे समुदाय के प्रति उत्तरदायी है। इस प्रकार प्रथानुगत कानून सामाजिक एकात्मता और सामूहिक उत्तरदायित्व को सुदृढ़ करते हैं।[7] साथ ही, प्रथानुगत कानून गोंड जनजाति की सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परम्पराएँ, रीति–रिवाज, नैतिक मूल्य और सामाजिक मानदण्ड इन्हीं नियमों के माध्यम से पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होते हैं। आधुनिकता और वैश्वीकरण के दबावों के बावजूद गोंड समाज अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने में सक्षम रहा है। एमिल दुर्खाइम के अनुसार, ऐसे समाजों में कानून यान्त्रिक एकजुटता के प्रतीक होते हैं, जहाँ समाज के सदस्य समान विश्वासों और नैतिक मूल्यों से जुड़े होते हैं।[8] गोंड जनजाति के प्रथानुगत कानून इसी यान्त्रिक एकजुटता को प्रतिबिम्बित करते हैं, क्योंकि यहाँ कानून सामूहिक नैतिकता की अभिव्यक्ति हैं।

विधिक दृष्टि से भारतीय संविधान ने गोंड जनजाति सहित समस्त अनुसूचित जनजातियों को विशेष संरक्षण प्रदान किया है। अनुच्छेद 244 तथा पंचम अनुसूची के अन्तर्गत राज्यपाल को यह अधिकार मिला है कि वे जनजातीय क्षेत्रों में राज्य के सामान्य कानूनों के अनुप्रयोग को संशोधित या सीमित कर सकें, जिससे प्रथानुगत कानूनों और सामाजिक संरचना की रक्षा हो सके।[9] यह प्रावधान राज्य कानून और जनजातीय स्वशासन के बीच सन्तुलन स्थापित करता है। पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 के माध्यम से गोंड बहुल क्षेत्रों में ग्राम सभा को विधिक मान्यता प्रदान की गई, जिससे स्थानीय विवाद निपटान, संसाधन प्रबन्धन और विकास सम्बन्धी निर्णयों में समुदाय की सहभागिता सुनिश्चित हुई।[10] इसी प्रकार वनाधिकार अधिनियम, 2006 ने गोंड जनजाति के पारंपरिक भूमि और वनाधिकारों को विधिक संरक्षण प्रदान कर ऐतिहासिक अन्याय के निवारण का प्रयास किया।[11] यद्यपि व्यवहार में चुनौतियाँ बनी हुई हैं, तथापि यह विधिक ढांचा गोंड जनजाति के स्वशासन, सांस्कृतिक संरक्षण और सामाजिक न्याय की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

प्रथानुगत कानून और आधुनिक विधिः द्वन्द्व एवं समन्वय– आधुनिक विधि–व्यवस्था और जनजातीय समाजों के प्रथानुगत कानूनों के बीच सम्बन्ध सदैव सरल और समरस नहीं रहा है। प्रथानुगत कानून सामाजिक परम्परा, सामुदायिक स्वीकृति और सांस्कृतिक निरन्तरता पर आधारित होते हैं, जबकि आधुनिक विधि–व्यवस्था समानता, व्यक्तिगत अधिकारों और मानवाधिकारों के सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसी वैचारिक भिन्नता के कारण दोनों के बीच कई स्तरों पर द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती है, यद्यपि कुछ क्षेत्रों में इनके बीच समन्वय के प्रयास भी दिखाई देते हैं।

महिला अधिकारों के सन्दर्भ में यह द्वन्द्व विशेष रूप से स्पष्ट रूप में सामने आता है। अनेक जनजातीय समाजों में प्रथानुगत कानूनों के अन्तर्गत महिलाओं को सम्पत्ति और उत्तराधिकार में सीमित अधिकार प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 और 15 लैंगिक समानता और भेदभाव निषेध की गारन्टी मिलती है। न्यायालयों ने विभिन्न निर्णयों में यह प्रतिपादित किया

है कि कोई भी प्रथा, जो महिलाओं के समान अधिकारों का उल्लंघन करती है, उसे संवैधानिक संरक्षण नहीं दे सकते।[12] इस प्रकार यहाँ प्रथानुगत कानून और संवैधानिक मूल्यों के बीच स्पष्ट टकराव दिखाई देता है।

इसी प्रकार बाल विवाह के प्रश्न पर भी परम्परा और आधुनिक कानून के बीच द्वन्द्व देखा जाता है। कुछ जनजातीय क्षेत्रों में सामाजिक स्वीकृति के आधार पर अल्पायु विवाह की प्रथाएँ प्रचलित रही हैं, किन्तु आधुनिक विधि–व्यवस्था, विशेषतः बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006, इसे स्पष्ट रूप से अवैध घोषित करती है। न्यायालयों का दृष्टिकोण यह रहा है कि सामाजिक परम्परा के नाम पर बच्चों के अधिकारों, स्वास्थ्य और गरिमा का उल्लंघन स्वीकार्य नहीं हो सकता।[13]

भूमि और प्राकृतिक संसाधनों के संदर्भ में भी यह द्वन्द्व महत्वपूर्ण रूप से उभरता है। जनजातीय समाज भूमि को केवल आर्थिक सम्पत्ति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक संसाधन मानते हैं, जबकि आधुनिक राज्य भूमि को विकास परियोजनाओं के लिए अधिग्रहण योग्य संसाधन के रूप में देखता है। इस सन्दर्भ में वनाधिकार अधिनियम, 2006 तथा पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 जैसे कानून प्रथानुगत अधिकारों और आधुनिक विधि के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास करते हैं।[14] ये अधिनियम यह स्वीकार करते हैं कि जनजातीय समाजों की परंपरागत अधिकार–व्यवस्था को नकारकर विकास संभव नहीं है।

अतः न्यायालयों और विधायिका का समग्र दृष्टिकोण यह रहा है कि प्रथानुगत कानूनों को तभी मान्यता दी जा सकती है, जब वे मानवाधिकारों, संवैधानिक मूल्यों और सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप हों। यही दृष्टिकोण परम्परा और आधुनिकता के बीच सन्तुलन स्थापित करने का आधार बनता है।

समकालीन चुनौतियाँ– समकालीन भारत में तीव्र सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन जनजातीय समाजों की परम्परागत संरचनाओं को गहराई से प्रभावित कर रहे हैं। गोंड जनजाति की प्रथानुगत न्याय–प्रणाली, जो लम्बे समय तक सामाजिक नियन्त्रण और सामुदायिक सन्तुलन का प्रभावी माध्यम रही है, आज अनेक नई चुनौतियों का सामना कर रही है। इन चुनौतियों के मूल में आधुनिकीकरण, शहरीकरण, शिक्षा और मीडिया का प्रभाव तथा औपचारिक न्याय– व्यवस्था की जटिलता प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं। आधुनिकीकरण और शहरीकरण के कारण गोंड समाज की पारम्परिक जीवन–पद्धति में तीव्र परिवर्तन आया है। रोजगार, शिक्षा और बेहतर जीवन–स्तर की तलाश में जनजातीय युवाओं का शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन बढ़ा है, जिससे सामुदायिक सम्बन्धों की सघनता में कमी आई है। इसके परिणामस्वरूप ग्राम पंचायतों और जनजातीय सभाओं की भूमिका कमजोर हुई है, जो प्रथानुगत कानूनों के क्रियान्वयन का प्रमुख आधार थीं।[15] शिक्षा और मीडिया के प्रभाव ने गोंड समाज में विधिक और सामाजिक जागरूकता तो बढ़ाई है, किन्तु इसके साथ–साथ पारम्परिक मूल्यों को चुनौती भी दी है। औपचारिक शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति–केन्द्रित अधिकारों और आधुनिक विधिक मान्यताओं का प्रसार हुआ है, जिससे सामूहिकता पर आधारित प्रथानुगत नियमों की स्वीकार्यता घट रही है। मीडिया और डिजिटल माध्यमों के कारण बाह्य संस्कृतियों और जीवन–शैलियों का प्रभाव बढ़ा है, जिसके चलते पारम्परिक न्याय प्रक्रियाओं को कई बार अप्रासंगिक या पिछड़ा समझा जाने लगा है।[16] औपचारिक न्याय–प्रणाली की जटिलता भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। यद्यपि राज्य की न्याय–व्यवस्था संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करती है, किन्तु उसकी प्रक्रियाएँ समय–साध्य, खर्चीली और तकनीकी होती हैं। इसके कारण गोंड समाज के अनेक सदस्य प्रथानुगत न्याय–प्रणाली और औपचारिक कानून के बीच दुविधा में पड़ जाते हैं। यह स्थिति प्रथानुगत कानूनों की प्रभावशीलता और वैधता पर प्रश्नचिह्न उत्पन्न करती है।[17] इन समकालीन चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक हो गया है कि परम्परा और आधुनिकता के बीच ऐसा सन्तुलन स्थापित किया जाए, जिससे एक ओर गोंड समाज की सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक संरचना सुरक्षित रहे और दूसरी ओर संवैधानिक मूल्यों तथा मानवाधिकारों का संरक्षण भी सुनिश्चित किया जा सके।

निष्कर्ष– प्रस्तुत अध्ययन यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करता है कि गोंड जनजाति के प्रथानुगत कानून केवल अतीत से चली आ रही परम्परागत व्यवस्थाएँ नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक स्थिरता, नैतिक अनुशासन और सामुदायिक जीवन के सुचारु संचालन के आधार स्तम्भ हैं। ये कानून जनजातीय समाज में सामाजिक नियन्त्रण, विवाद–समाधान और न्याय सुनिश्चित करने की एक प्रभावी और मानवीय प्रणाली प्रदान करते हैं, जो सामूहिक स्वीकृति और परम्परा पर आधारित है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से गोंड समाज के प्रथानुगत कानून सामुदायिक एकता और सामूहिक चेतना को सुदृढ़ करते हैं। विवाह, सम्पत्ति और दण्ड से सम्बन्धित नियम व्यक्ति को समुदाय से जोड़कर रखते हैं तथा सामाजिक विचलन की स्थिति में सुधार और पुनर्स्थापन पर बल देते हैं। इससे समाज में यान्त्रिक एकजुटता बनी रहती है और सांस्कृतिक निरन्तरता सुनिश्चित होती है। विधिक दृष्टिकोण से यह अध्ययन इंगित करता है कि प्रथानुगत कानूनों को आधुनिक संवैधानिक ढांचे से पृथक् नहीं देखा जा सकता। भारतीय संविधान समानता, स्वतन्त्रता और मानवाधिकारों की गारन्टी देता है, अतः कोई भी प्रथा यदि इन मूल्यों के प्रतिकूल हो, तो उसे सन्तुलित या संशोधित किया जाना आवश्यक है। पंचम अनुसूची, पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 और वनाधिकार अधिनियम जैसे प्रावधान इसी समन्वय के प्रयास हैं। अतः यदि प्रथानुगत कानूनों को संवैधानिक मूल्यों, मानवाधिकारों और सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप सन्तुलित किया जाए, तो वे न केवल जनजातीय समाज की सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित कर सकते हैं, बल्कि सशक्तिकरण, स्वशासन और न्यायपूर्ण विकास का भी प्रभावी माध्यम बन सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मजूमदार, डी. एन. (1963). सामाजिक मानवविज्ञान. बॉम्बेः एशिया पब्लिशिंग हाउस,पृष्ठ– 123.
2. मालिनोव्स्की, ब्रोनिस्लाव (1926). आदिम समाज में अपराध और प्रथा. लन्दनः रूटलेज, पृष्ठ– 152.
3. बक्सी, उपेन्द्र (2008). भारतीय संविधान. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ– 161.
4. बेतेइले, आन्द्रे (1996). भारत में समाज और राजनीति. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ– 73.
5. उपाध्याय, वी. एस. (2004). भारत में जनजातीय विकास. नई दिल्लीः कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, पृष्ठ– 201.
6. ब्रैथवेट, जॉन (2002). पुनर्स्थापनात्मक न्याय और उत्तरदायी विनियमन. ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ– 234.
7. बेतेइले, आन्द्रे (1996). भारत में समाज और राजनीति. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ– 145.
8. दुर्खाइम, एमिल (1912). धार्मिक जीवन के मूल रूप. लन्दनः एलन एण्ड अनविन, पृष्ठ– 171.
9. बसु, डी. डी. (2015). भारतीय संविधान का परिचय. नई दिल्लीः लेक्सिसनेक्सिस, पृष्ठ– 76.

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

10. क्षक्सा, वीरभारत (2014) जनजाति, विकास और विस्थापन. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ– 231.
11. उपाध्याय, वी. एस. (2008). वन अधिकार और भारत में जनजातीय विकास. नई दिल्लीः कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कं0, पृ.– 131.
12. बसु, डी. डी. (2015). भारतीय संविधान का परिचय. नई दिल्लीः लेक्सिसनेक्सिस, पृष्ठ–122।
13. एग्नेस, फ्लाविया (2011). परिवार विधि और संवैधानिक दावे. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ– 111.
14. क्षक्सा, वीरभारत (2014) जनजाति, विकास और विस्थापन. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ– 231.
15. क्षक्सा, वीरभारत (2014) जनजाति, विकास और विस्थापन. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ– 156.
16. बेतेइले, आन्द्रे (1996). भारत में समाज और राजनीति. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ– 154.
17. उपाध्याय, वी. एस. (2004). भारत में जनजातीय विकास. नई दिल्लीः कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, पृष्ठ– 183.

*****